डॉ0 शिप्रा प्रभा
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
मगध महिला कॉलेज,पटना
email- gyanshipra31@gmail.com

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कवि–परिचय

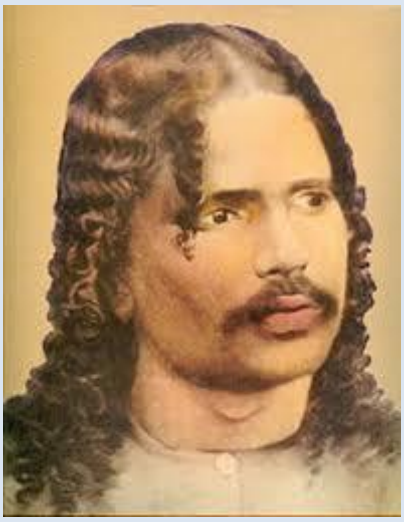

जीवन–परिचय :–

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक और भारतीय नवोत्थान के प्रतीक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर 1850 ई0 को उनके ननिहाल काशी में हुआ। वे प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के वशंज थे। उनके पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास' और माता का नाम पार्वती देवी था। अल्पायु में ही उनके माता–पिता का साया उनके सर से उठ गया था। विमाता को उनसे कोई विशेष प्रेम न था जिस कारण उनका लालन–पालन दाई कालीकदमा और नौकर तिलकधारी ने किया। बचपन में हिन्दी की शिक्षा पं0 ईश्वरदत्त, उर्दू की मौलवी ताजअली और अंग्रेजी की शिवप्रसाद सितारेहिंद से मिली। पिता की असामयिक मृत्यु का प्रभाव इनकी शिक्षा पर पड़ा। पिता की मृत्यु के पश्चात् हरिश्चन्द्र जी 2–3 वर्षों तक बनारस के क्वींस कॉलेज गए। 'यद्यपि पढ़ने में उनका जी बहुत न लगता था तो भी ऐसा कभी न हुआ कि वे परिक्षाओं में उत्तीर्ण न हुए हों। वे कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मरणशक्ति युक्त थे। कॉलेज छोड़ने के बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वाध्याय द्वारा ज्ञान

प्राप्त किया। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के अतिरिक्त मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, उर्दू इत्यादि भाषाएँ भी उन्होंने स्वयं अपनी प्रतिभा के बल पर सीख ली थीं।'

सन् 1883 में मात्र तेरह वर्ष की आयु में इनका विवाह काशी के रईस लाला गुलाबराय की पुत्री मन्नादेवी से सम्पन्न हुआ। 'पन्द्रह वर्ष की अवस्था में घर की स्त्रियों के आग्रह के कारण उन्हें सकुटुम्ब जगन्नाथ यात्रा करनी पड़ी। यह यात्रा जहाँ एक ओर शिक्षा में बाधक सिद्ध हुई, वहाँ दूसरी ओर उससे उन्हें अनेक प्रकार के अनुभव और नवीन भावों का एवं विचारों से परिचित होने के अवसर भी प्राप्त हुए। इसी समय से उनको ऋण लेने की आदत भी पड़ी। जगन्नाथ जी की यात्रा से लौट कर वे बुलंदशहर, कचेसर, कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, ब्रज, आगरा, पुष्कर, अजमेर, प्रयाग, पटना, डुमराँव, हरिहर क्षेत्र, कलकत्ता, बस्ती, गोरखपुर, बलिया, बैधनाथ, उदयपुर आदि अनेक स्थानों की यात्रा करने गए। यात्रा करने के साथ–साथ वे प्रत्येक स्थान के जीवन क्रम और वहाँ की साहित्यिक गतिविधयों का अध्ययन करते और अपने देश–प्रेमपूर्ण तथा मातृभाषोद्धार की भावना से पूर्ण भाषण देते थे। 1880 ई0 में पं0 रघुनाथ, पं0 सुधाकर द्विवेदी, पं0 रामेश्वरदत्त व्यास आदि के प्रस्तावानुसार हरिश्चन्द्र को 'भारतेन्दु' की पदवी से विभूषित किया गया।

1884 ई0 की बलिया–यात्रा एक प्रकार से उनकी अन्तिम यात्रा थी। कुछ–कुछ तो वे पहले से ही अस्वस्थ थे किन्तु बलिया से लौटने के अनन्तर कार्य–भार और कौटुम्बिक तथा अन्य सांसारिक चिन्ताओं के कारण उनका जर्जर शरीर और अधिक भार सहन न कर सका। 6 जनवरी 1885 ई0 को चौंतिस वर्ष चार महीने की अवस्था में उनका देहांत हो गया। इस थोड़ी सी आयु में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देश और हिन्दी भाषा तथा साहित्य की जो सेवा की, वह चिरस्मरणीय रहेगी।

साहित्यिक यात्रा :–

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास' अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। निश्चय ही उनके ही प्रभाव से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र साहित्य की ओर उन्मुख हुए। मात्र पाँच वर्ष की अल्पायु

में उन्होंने निम्नलिखित दोहा रच कर अपने पिता को चकित कर दिया –

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरूद्ध सुजान।

बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।।

हिन्दी काव्य–जगत में भारतेन्दु का आविर्भाव दो ऐतिहासिक युगों के सन्धि–स्थल पर हुआ। भारतेन्दु प्राचीन और नवीन की संधि–रेखा पर खड़े थे। उन्होंने न तो प्राचीन की उपेक्षा की और न उसके मोह में बँधे। साथ ही उन्होंने न तो नवीन का अन्धानुकरण किया और न उससे सशंकित ही रहे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन विलक्षण जागरणकर्ता तथा युग–प्रवर्तक प्रतिभाओं में है, जिनकी वाणी युग–स्तंभ बनकर युग–युग की विभूति बन गई है। एक ओर वे अतीत के सम्वाहक है, दूसरी ओर वर्तमान के बैतालिक और तीसरी ओर भविष्य के स्वपन द्रष्टा।

‘‘ भारतेन्दु ने समाज और साहित्य दोनों के लिए बहुत कुछ किया। उन्होंने तीन पत्रिकाएँ निकालीं– सन् 1868 में ‘कवि–वचन–सुधा’, सन् 1873 में ‘हरिश्चन्द्र मैगजीन’ जिसका नाम आगे चलकर ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ हो गया और सन् 1874 में ‘बाला बोधिनी’। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने चारों ओर लेखकों का एक मंडल तैयार कर लिया था जिसमें उस युग के प्रसिद्ध साहित्यकारों में हम पं0 बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’, पं0 प्रतापनारायण मिश्र, पं0 बालकृष्ण भट्ट, पं0 अंबिकादत्त व्यास, पं0 राधाकृष्ण गोस्वामी, डॉ0 जगमोहनसिंह और लाला श्रीनिवासदास के नाम ले सकते हैं।

सन् 1873 में भारतेन्दु ने ‘पेनी रीडिंग’ नाम से एक गोष्ठी स्थापित कीं उसी वर्ष ‘तदीय समाज’ नाम की एक सभा की नींव डाली। शिक्षा प्रसार के लिए इन्होंने एक स्कूल खोला जो ‘चौखंभा स्कूल’ के नाम से जाना जाता था। वही स्कूल अब उन्नति करते–करते ‘हरिश्चन्द्र डिग्री कॉलेज’ हो गया है।’’

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। साहित्य की हर विधा को उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा समृद्ध किया है। साहित्यिक–क्षेत्र में उनके कृत–कार्य के कारण ही आधुनिक काल के आरंभिक–युग को भारतेन्दु–युग की संज्ञा दी गयी है।

काव्यगत–विशेषताएँ :–

भारतेन्दु–युगीन काव्य की सभी प्रवृतियाँ यथा– देश और राज भक्ति, सामाजिक–आर्थिक चेतना, भक्तिपरक रचनाएँ, प्रेम और प्रकृति चित्रण, समस्यापूर्ति, हास्य–व्यंग्य इत्यादि भारतेन्दु के काव्य में परिलक्षित होती है।

वैष्णव घराने में जन्म लेने के कारण उन्होंने कृष्ण की समस्त लीलाओं का वर्णन बड़े ही अनुराग से किया है–

नव कुंजन बैठे पिया नंदलाल जू जानत हैं सब कोक–कला।

दिन में तहाँ दूती भुराइ कैलाई, महा छवि–धाम नई अबला।

जब धाय गही 'हरिचंद' पिया तब बोली अजू तुम मोहि छला।

मोहिं लाज लगै,बलि पाँव परौं,

दिन ही हहा ऐसी न कीजै लला।।

भारतेन्दु की रचनाओं में राजभक्ति भी देखने को मिलती है, कारण भारतवर्ष के लिए कोई भी उपकार का काम करता था तो भारतेन्दु का हृदय उसके लिए उमड़ने लगता था। सम्राट एडवर्ड सप्तम के आगमन पर उनके हृदय का आह्लाद इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से दिखता है –

स्वागत–स्वागत धन्य तुम भावी राजधिराज।

भई सनाया भूमि यह परसि चरन तुब आाज।।

ऐसा नहीं है कि उन्होंने भारत–हित में अँग्रेजों द्वारा किये गये कार्यों की केवल प्रशंसा की है, अपितु अँग्रेजों की शोषण–नीति का दृढ़तापूर्वक विरोध भी किया है –

भीतर–भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि के तन मन धन मूसै।

ज़ाहिर बातन में अति तेज़, क्यों सखि साजन! नहिं अँग्रेज।।

भारत की दयनीय सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर भारतेन्दु का हृदय अत्यंत द्रवित भी हुआ है –

रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।

हा! हा! भारत–दुर्दशा न देखी जाई।।

भारतेन्दु प्रेम के कवि है। उनके प्रत्येक शब्द से प्रेम टपकता है। रसिकता और पीड़ा का विचित्र संयोग उनके काव्य में मिलता है –

पिय प्यारे बिना यह माधुरी मूरति

औरन को अब पेखिये का।

सुख छाँड़ि के संगम को तुमरे

इन तुच्छन को अब लेखिये का।

'हरिचन्द्र जू' हीरन कौ बेवहार कै

काँचन को लै परेखिये का।

जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो

उन आँखिन सों अब देखिये का।

व्यंग्य और हास्य में भी हरिश्चंद्र पीछे नहीं रहे है। उर्दू का मजाक उड़ाने के लिए उन्होंने 'उर्दू का स्यापा' लिखा –

है है उर्दू हाय हाय !

कहाँ सिधारी हाय हाय।।

मेरी प्यारी हाय हाय।

मुँशी मुल्ला हाय हाय।।

हिन्दी को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। मातृभाषा से उन्हें विशेष प्रेम था। उनका मानना था कि आप संस्कृत, फारसी और अँग्रेजी के कितने ही बड़े विद्वान हों, परन्तु अपनी भाषा के ज्ञान के बिना आप किसी काम के नहीं है। सन् 1877 में 'हिंदी वर्द्धिनी सभा' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के संबंध में एक व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में कुल 98 दोहे थे। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटन न हिय को सूल।।
पढ़ो लिखो कोउ लाख विधि भाषा बहुत प्रकार।
पै जब ही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार।।

भारतेन्दु उर्दू में 'रसा' नाम से शायरी भी किया करते थे और साथ ही उन्होंने बँगला, संस्कृत, पँजाबी, गुजराती और मारवाड़ी में भी कुछ रचनाएँ की है।

भारतेन्द जी के काव्य की प्रमुख भाषा ब्रजभाषा है। उनकी भाषा सरल तो है ही किन्तु कहीं–कहीं उन्होंने मुहावरों का प्रयोग भी किया है। छंदों में कवित्त–सवैये, कुंडलिया, दोहा इत्यादि का प्रयोग उन्होंने प्रमुखता से किया है। इसके अतिरिक्त ठुमरी, लावनी, लोकगीत, ख्याल आदि का प्रयोग भी इनके काव्य में मिलता है। उनके पदों में भक्तिकाल और रीतिकाल के प्रमुख कवियों का लालित्य विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में – ''भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते है तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।''

प्रमुख रचनाएँ :–

परम्परानुरूप साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गीय रचनाएँ –

भक्ति सर्वस्व (1870 ई0), कार्तिक स्नान (1872 ई0), वैशाख माहात्म्य (1872 ई0), देवी छद्म लीला (1873 ई0), प्रातः स्मरण मंगल पाठ (1873 ई0), तन्मय लीला (1874 ई0), दान लीला (1874 ई0), रानीछद्मलीला (1874 ई0), प्रबोधनी (1874 ई0), स्वरूप चिंतन (1874 ई0), श्रीपंचमी (1875 ई0), श्रीनाथ स्तुति (1877 ई0), अपवर्गदाष्टक (1877 ई0), अपवर्ग पंचक (1877 ई0), प्रातः स्मरण स्तोत्र (1877 ई0), वैष्णव सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, तदीय सर्वस्व (1877 ई0), भक्ति सूत्र वैजयन्ती इत्यादि।

भक्ति तथा दिव्य–प्रेम संबंधी रचनाएँ –

प्रेम मलिका (1871 ई0), प्रेम सरोवर (1873 ई0), प्रेमाश्रु–वर्षण (1873 ई0), प्रेम माधुरी (1875 ई0), प्रेम–तरंग (1877 ई0), प्रेम–प्रलाप (1877 ई0), होली (1879 ई0), मधुमुकुल, वर्षा विनोद (1880 ई0), विनय प्रेम पचासा (1880 ई0), फूलों का गुच्छा (1882 ई0), प्रेम फुलवारी (1883 ई0), कृष्णचरित्र (1883 ई0)।

नवीन रचनाएँ –

स्वर्गवासी श्रीअलवरत वर्णन अन्तर्लपिका (1869 ई0), श्री राजकुमार–सुस्वागत पत्र (1869 ई0), सुमनांजलिः (1871 ई0), मुहँ दिखावनी (1874 ई0), श्रीराजकुमार–शुभागमन–वर्णन (1875 ई0), भारत शिक्षा (1875 ई0), मानसोपायन (1875 ई0), हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान (1877 ई0), मनोमुकुलमाला (1877 ई0), भारत वीरत्व (1878 ई0), विजय वल्लरी (1881 ई0), विजयिनी–विजय–पताका या वैजयन्ती (1882 ई0), नये जमाने की मुकरी (1884 ई0), जातीय संगीत (1884 ई0), रिपनाष्टक (1884 ई0)

हास्य–व्यंग्य रचनाएँ –

उर्दू का स्यापा (1874 ई0), बंदर सभा (1879 ई0)

अन्य रचनाएँ –

बकरी विलाप (1874 ई0), बसंत होली (1874 ई0), प्रात समीरन (1874 ई0), श्री जीवन जी महाराज (1872 ई0), चतुरंग (1872 ई0), मूक प्रश्न (1877 ई0), उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876–77 ई0), गीत गोविंदानंद (1877–78 ई0), सतसई–श्रृंगार (1875–78 ई0) ।

‘‘भारतेन्दु अपनी अनेक रचनाओं में जहाँ प्राचीन काव्य–प्रवृत्तियों के अनुवर्ती रहे, वहाँ नवीन काव्यधारा के प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। राजभक्त होते हुए भी वे, देशभक्त थे, दास्य भाव की भक्ति के साथ ही उन्होंने मार्धुय–भाव की भक्ति भी की है, नायक–नायिका के सौन्दर्य–वर्णन में ही न रमकर उन्होंने उनके लिए नवीन कर्त्तव्य–क्षेत्रों का भी निर्देश किया है और इतिवृत्तात्मक काव्य–शैली के साथ ही उनमें हास्य–व्यंग्य का पैनापन

भी विद्यमान है। अभिव्यंजना क्षेत्र में भी उन्होंने ऐसी ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली प्रवृत्तियों को अपनाया है, जो उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्ति का प्रमाण है। 'हिन्दी भाषा' में प्रबल हिन्दीवादी के रूप में सामने आने पर भी उन्होंने उर्दू–शैली में कविताएँ लिखी हैं ओर काव्य–रचना के लिए ब्रजभाषा को ही उपयुक्त मानने पर भी वे खड़ीबोली में 'दशरथ–विलाप' तथा 'फूलों का गुच्छा' कविताएँ लिखते दिखाई देते हैं। काव्य–रूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छन्दोंबद्ध कविताओं के साथ ही उन्होंने गेय पद–शैली में भी विदग्धता परिचय दिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कविता के क्षेत्र में वे नवयुग के अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भाव–मर्मज्ञता और प्रभविष्णुता में उनका काव्य इतना प्राणवान है कि उस युग का शायद ही कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।''

सहायक पुस्तक :–

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र
2. आधुनिक कवि – विश्वम्भर 'मानव', रामकिशोर शर्मा
3. हिन्दी साहित्य कोश – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान संपादक)
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल